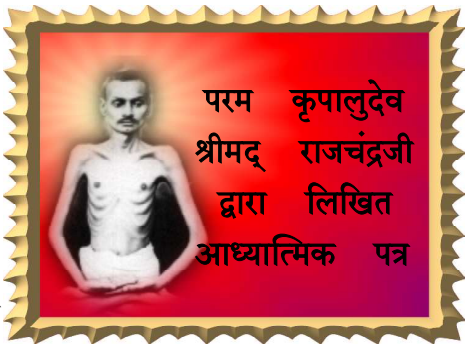

१९५ बंबई , पौष १९४७

सत्स्वरुपको अभेदरुपसे अनन्य भक्तिसे नमस्कार

जिसे मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे सब विकल्पोंको छोड़कर इस एक विकल्पको वारंवार स्मरण करना आवश्यक है-

''अनन्तकालसे जीवका परिभ्रमण हो रहा हे, फिर भी उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती? और वह कया करनेसे हो?''

इस वाक्यमें अनंत अर्थ समाया हुआ है; और इस वाक्य में कही हुई चिंतना किये बिना, उसके लिये दृढ़ होकर तरसे बिना मार्गकी दिशाका भी अल्प भान नहीं होता; पूर्वमें हुआ नहीं, और भविष्यकालमें भी नहीं होगा। हमने तो ऐसा जाना है। इसलिये आप सबको यही खोजना है। उसके बाद दूसरा कया जानना? वह मालूम होता हे।

१९६ बंबई, माघ सुदी ७, रवि, १९४७

मु-पनसे रहना पड़ता है ऐसे जिज्ञासु,

जीवके लिये दो बड़े बंघन हैं, ऐक स्वच्छंद और दूसरा प्रतिबंध । जिसकी इच्छा स्वच्छंद दूर करनेकी है, उसे ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन करना चाहिये, और जिसकी इच्छा प्रतिबंध दूर करनेकी है, उसे सर्वसंगका त्यागी होना चाहिये। ऐसा न हो तो बंधनका नाश नहीं होता । जिसका स्वच्छंद नष्ट हुआ है, उसको जो प्रतिबंध है, वह अवसर प्राप्त होनेपर नष्ट होता है, इतनी शिक्षा स्मरण करने योग्य है ।

यदि व्याखयान करना पड़े तो करे, परन्तु इस कार्यकी अभी मेरी योग्यता नहीं है और यह मुझे प्रतिबंध है, ऐसा समझते हुए उदासीन भावसे करे । उसे न करनेके लिये श्रोताओंको रुचिकर तथा योग्य लगें ऐसे प्रयत्न करे, और फिर भी जब करना पड़े तो उपर्युक्तके अनुसार उदासीन भाव समझकर करे।

१९७ बंबई, माघ सुदी ९, मंगल, १९४७

आपका आनंदरुप पत्र मिला । ऐसे पत्रके दर्शनकी तृषा अधिक है ।

ज्ञानके 'परोक्ष-अपरोक्ष' होनेके विषयमें पत्रसे लिखा जा सकना सम्भव नहीं है, परन्तु सुधाकी धाराके पीछेके कितने ही दर्शन हुए है, और यदि असंगताके साथ आपका सत्तसंग हो तो अंतिम स्वरुप परिपूर्ण प्रकाशित हो ऐसा है; कयोंकि उसे प्राय: सर्व प्रकारसे जाना है, और वही राह उसके दर्शनकी है। इस उपाधियोगमें भगवान इस दर्शनको नहीं होने देंगे, ऐसा वे मुझे प्रेरित करते है, इसलिये जब एकांतवासी हुआ जायेगा तब जान-बूझकर भगवानका रखा हुआ परदा मात्र थोड़े ही प्रयत्नसे दूर हो जायेगा । इसके अतिरिक्त दुसरे स्पष्टीकरण पत्र द्वारा नहीं किये जा सकते ।

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१९ पर...)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६ः अंक-२५९, वर्ष-२४, जून-२०१९

आषाढ़ शुक्ल १४, शुक्रवार, दि. १-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६४, प्रवचन-२३

अब, '**गृहस्थ हो या मुनि, दोनों के लिए आत्मलीनता सिद्धि के सुख का उपाय है।**' अब ऐसी गाथा। अभी कोई कहते हैं न कि गृहस्थाश्रम में आत्मा का ध्यान, ज्ञान नहीं होता। आठवें (गुणस्थान में) होता है। अभी तो शुभोपयोग होता है - (ऐसा कोई कहते हैं।)

सागारु वि णागारु कु विं, जो अप्पाणि वसेइ। सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ।।६५।।

जिनवर सर्वज्ञदेव परमेश्वर परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव धर्मसभा में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, भगवान की वाणी में ऐसा हुकम आया, ऐसा सन्देश आया कि गृहस्थाश्रम में रहनेवाला कुटुम्ब में पड़ा होने पर भी इस आत्मा का अन्तर में ज्ञान दर्शन करके बस सकता है। समझ में आया?

'**गृहस्थ हो या मुनि कोई भी हो, जो अपने आत्मा में वास करता है।**' यह तो योगीन्द्रदेव कहते हैं। भगवान की साक्षी (देते हैं)। दूसरे (लोग) कहते हैं, भगवान की साक्षी से ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! भगवान परमेश्वर सर्वज्ञदेव जिनवर ऐसा कहते हैं न, भाई! वीतराग का बिम्ब जिसने पूर्णानन्द का प्रगट किया है, उसे इच्छा बिना वाणी में ऐसा आया है न कि गृहस्थ भी पाँचवें गुणस्थान, चौथे (गुणस्थान) आदि में अपने आत्मा को शुद्ध निर्विकल्प का अनुभव करने पर उस आत्मा में बसता है, बस सकता है। समझ में आया? वे कहें, गृहस्थाश्रम में ध्यान नहीं होता, उसे अनुभव नहीं होता, उसे स्वरूपाचरण नहीं होता.... आहा...हा...!

'**अप्पाणि वसेइ है,**' लो, आत्मा में बसता है। गृहस्थाश्रम में राग हो परन्तु उससे भिन्न पड़कर स्वयं निवृत्ति के काल में भगवान आत्मा (में) निर्विकल्पदशा द्वारा, शुद्ध उपयोग द्वारा बसता है और यह बसना हो सकता है - ऐसा जिनवर कहते हैं। कहो, इसमें समझ में आया? मुनि को ही ऐसा हो सके - ऐसा नहीं है। मुनि उग्ररूप से बसते हैं। मुनि अर्थात् सच्चे, हाँ! सच्चे मुनि; वे उग्ररूप से आत्मा में बसते हैं; आत्मा में बसते हैं। आहा...हा...!

समकिती ज्ञानी श्रावक हो, तो भी वह आत्मा में बसता है। एक न्याय क्या देते हैं? उसमें उसे अशुभ आदि राग होता है, तथापि उसका उसमें वास्तव में बसना नहीं होता। एक बात यह है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तीन कषाय है, श्रावक को दो कषाय, मुनि को एक (कषाय है) फिर भी निश्चय से तो वे आत्मा में ही बसे हुए हैं - ऐसा एक न्याय से कहते हैं। समझ में आया?

वह राग में बसता ही नहीं, दृष्टि ही नहीं-

ऐसा कहते हैं। सम्यक् आत्मा का, शुद्ध चैतन्य का भान, निर्विकल्प वेदन हुआ और थोड़ी शुद्धि बढ़ी तथा उससे शुद्धि बढ़ी मुनि को, परन्तु इन सबका वास्तव में तो आत्मा में ही बसना है। रागादि बाकी हैं, वे तो ज्ञान में जाननेयोग्य वस्तु है। आहा...हा...! समझ में आया?

'**अपने आत्मा में वास करते हैं, वे शीघ्र ही सिद्धि का सुख पाते हैं। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।**' समझ में आया? उसका श्लोक भी है? गुजराती क्या किया है अन्दर? '**मुनिजन के कोई ग्रही जो होय आतमलीन**' - देखो! गृहस्थाश्रम में भी पुण्य-पाप के विकल्प होने पर भी, उनसे भगवान आत्मा को ज्ञानस्वरूप से अधिक अनुभव करके और विकार से भिन्न करके, निर्विकल्पस्वभाव में एकत्व होकर उसमें बसते हैं, वे अल्पकाल में मुक्ति के सुख को पाते हैं। वे गृहस्थ में हो या मुनिपने में; दोनों आत्मा में बसे हुए मुक्तिपने को पाते हैं - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

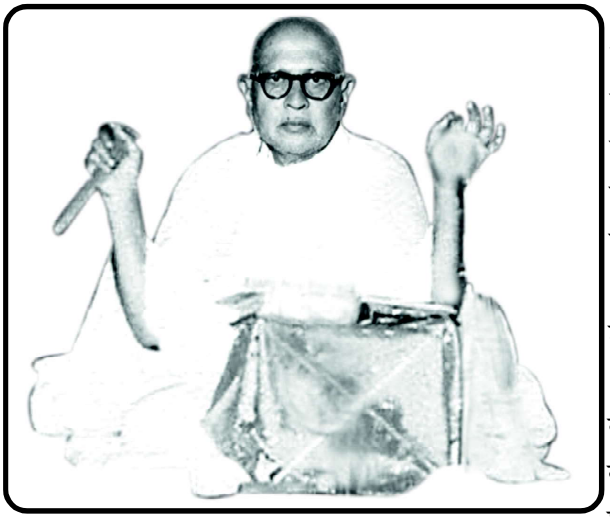

एक तो ऐसा कहा कि गृहस्थाश्रम हो या मुनि-आश्रम हो, त्याग-आश्रम, परन्तु भगवान आत्मा का शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और रमणता का भाव प्रगट गृहस्थाश्रम में भी होता है। इससे वह आत्मा में बसता है। मुनि को विशेष उग्रतारूप से पुरुषार्थ है तो वे आत्मा में बसते हैं। दूसरा, ये दोनों - गृहस्थ या मुनि को रागादि बाकी हैं, उसमें उनकी खास दृष्टि नहीं है, इसलिए वहाँ वास्तव में नहीं रहते हैं, वास्तव में वे रहे ही नहीं। आहा...हा...! इसमें समझ में आया?

आत्मा अर्थात् अकेला अनन्त शुद्धभाव का भण्डार.... आत्मा अर्थात् अकेले अनन्त शुद्धभाव का भण्डार, यह भण्डार जिसने राग की एकता तोड़कर खोला है, कहते हैं कि उसके स्वभाव में वह जितना बसा है, वह स्वभाव में ही बसा है। रागादि होने पर भी उसमें उसका बसना नहीं है। उन्हें भी छोड़कर स्थिर होऊँ, स्थिर होऊँ - ऐसा उसे है। आहा...हा...! समझ में आया? परमार्थ से देखें तो एक न्याय से मुनि और गृहस्थ तो आत्मा में बसे हुए हैं। आहा...हा...! बात तो गम्भीर कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में या आगे बढ़कर मुनि हुआ हो, दोनों व्यवहार से तो मुक्त हैं और बसे हैं स्वभाव में। आहा...हा...! समझ में आया? भले पाँच (में) व्यवहार आदि के शुभविकल्प विशेष हों, छठवें (गुणस्थान में) शुभ आदि के थोड़े हों, तथापि धर्मी का वास तो चैतन्य भगवान शुद्ध परमानन्द की मूर्ति है, वहाँ उसका बसना-आत्मा में बसना है। यह अनात्मा ऐसे पुण्य-पाप के भाव और उनके फल तथा उनके फल संयोग, यह इसमें रहा हुआ - बसा हुआ वह धर्मात्मा नहीं है। समझ में आया? प्रेम की प्रीति करके जिसमें पड़ा है, उसमें वह बसा है। इस पुण्य-पाप में प्रेम नहीं, रुचि नहीं, उसे जहररूप जानता है; इसलिए उनसे मुक्त है। अत: उनमें बसा है - ऐसा नहीं कहा जाता है। कहो, रतिभाई! आहा...हा...!

आत्मा में बसता है ऐसा कहा है न? '**अप्पाणि वसेइ**' शब्द है न? '**अप्पाणि वसेइ**' गृहस्थाश्रम में हो या मुनि हो, भगवान आत्मा अनन्त शुद्ध गुण

सम्पन्न प्रभु, उसे जिसने दृष्टि में, ज्ञान में ज्ञेय करके बनाया है, उसमें जितने अंश में स्थिर हुआ, वह स्थिर होने का स्थान ही उसे मानता है। अर्थात् धर्मी को बसने का वास आत्मा ही है। आहा...हा...! पुण्य-पाप का विकल्प आदि जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह भी समकिती श्रावक या मुनि को बसने का वास-यह उसका घर नहीं है। समझ में आया? अन्तर्मुख प्रभु विराजमान है, स्वयं परमात्मस्वरूप विराजता है - ऐसा जहाँ अन्तर में वास - दृष्टि, ज्ञान लीनता हुई, कहते हैं कि वह आत्मा में ही बसता है। एक सिद्ध ऐसे किया।

दूसरा ऐसा कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में आत्मा में बसना नहीं हो, उसका निषेध किया। समझ में आया? तीसरा कि उसका व्यवहार होता है, उसका वह स्वामी है, उसमें वह बसता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? गृहस्थ में हो या मुनि हो, भगवान आत्मा जहाँ राग से निराला श्रद्धा-ज्ञान में, अनुभव में आया, तो कहते हैं कि उसका बसना तो उसमें ही प्रेम से बसा है। समझ में आया? गृहस्थ या मुनि यह तो फिर स्थिरता के अंश में भेद है परन्तु वास और बसना तो और रुचि की जमावट जमी है आत्मा में; उसे राग होने पर भी (वह उसमें) नहीं बसता है। श्रावक या मुनि, राग में नहीं बसा है। इस व्यवहार के राग से ही समकिती गृहस्थ हो या मुनि, (वह) मुक्त ही है। जिससे मुक्त है, उसमें बसा कैसे? आहा...हा...! समझ में आया?

कहा न? मीराबाई ने नहीं कहा? हैं? 'परणी मारा पियूजीनी साथ, बीजाना मिंढोल नहीं बाँधू.... नहीं रे बाँधू राणा नहीं रे बाँधू.... ऐ परणी मारा पियूजीनी साथ, बीजाना मिंढोल नहीं रे बाँधू....' इसी प्रकार सम्यक्त्वी (कहता है)। 'लगनी लागी चैतन्य के साथ, दूसरे के भाव नहीं रे आदरूँ....'

उसमें कहा है न? 'धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंग सू, भंग मा पड़शो प्रीत जिनेश्वर, बीजो मन मन्दिर आणुं नहीं....' यह किसकी बात चलती है? '**अप्पाणि वसेइ**' की (बात) चलती है। 'धर्म जिनेश्वर गाऊँ...' मेरा स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड ज्ञायक आनन्दकन्द के मैं गुणगान गाता हूँ। 'धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंग शुं....' मैं इस पुण्य-पाप का गुणगान नहीं गाता - ऐसा कहते हैं। 'भंगम पड़शो प्रीत जिनेश्वर, बीजो मन मन्दिर आणुं नहीं....' यह प्रभु हमारे चैतन्य के प्रेम में भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ हमारी दृष्टि में बसा, 'बीजो मन मन्दिर आणुं नहीं....' मेरे मन के मन्दिर में विकल्प को स्थान नहीं दूँ कि यह मेरा स्थान है - ऐसा नहीं दूँ। समझ में आया? 'ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर, ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर...' - अनन्त सन्तों के, सिद्धों के कुल की हमारी यह रीत है। समझ में आया? 'ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर, धर्म जिनेश्वर गाऊँ रे... रंगशु' - आनन्दघनजी (कहते हैं)।

यहाँ कहते हैं आत्मा पुण्य और पाप के रागरहित आनन्दस्वरूप जहाँ भासित हुआ और रुचि में जमा तथा परिणमित हुआ - ऐसा धर्मात्मा गृहस्थ हो या मुनि हो। '**अप्पाणि वसेइ**'। समझ में आया? जहाँ जिसकी रुचि, वहाँ उसका निवास। जिसकी रुचि उठी, वहाँ उसका निवास नहीं होता। कहो, इसमें समझ में आया? यह... सामने बहुत पड़ा है परन्तु ऐसा निकला।

सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ।।६५।।

यह तीन लोक के नाथ जिनवरदेव की वाणी में, यह ध्वनि इन्द्रों की उपस्थिति में आयी (कि) जो कोई गृहस्थाश्रम में या मुनिपने में हो; जिसने भगवान आत्मा की रुचि में, आत्मा में वास किया, वह गृहस्थ हो या मुनि हो, दोनों अल्प काल में

मुक्ति पायेंगे। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? (लोग) चिल्लाहट मचाते हैं... अर...र...! हे भगवान! गृहस्थाश्रम में आत्मा नहीं, ऐसा। आत्मानुभव नहीं अर्थात् कि आत्मा नहीं। अरे...! तू क्या कहता है? प्रभु! आहा...हा...! समझ में आया?

गृहस्थाश्रम हो या मुनिपना हो; जहाँ आत्मा जिसे दृष्टि में अनुभव में बसा है, उसका वास राग में नहीं है, उसका वास आत्मा में है। उसके बदले यहाँ तो समकिती को और श्रावक को पूरा आत्मा में वास है - ऐसा सिद्ध करना है। अन्य कहते हैं, बिल्कुल नहीं.... तब कहते हैं, अकेला आत्मा में ही वास है, सुन! तेरा कलेजा कायर हो गया, पामर! जिसे आत्मा की प्रभुता प्रगटी - ऐसी प्रभुता की जहाँ झंकार बजी, वहाँ उसका वास तो आत्मा में है। गृहस्थ है, स्त्री-पुत्र, परिवार है, इसलिए राग है (और) राग में बसा है (- ऐसा) जिनवर नहीं कहते हैं। समझ में आया?

जहाँ जिसकी प्रीति जमी, वहीं वह स्थित है। यह अन्यत्र ठहरना उसे नहीं रुचता है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! इसमें समझ में आया? '**जिणवर एम भणेइ**' - गुरु को आधार देना पड़ता है। योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त, महालक्ष्मी के स्वामी हैं। नग्न दिगम्बर वनवासी, वे भगवान का आधार लेकर (कहते हैं) अरे...! भगवान ऐसा कहते हैं। यह मैं कहनेवाला कौन? समझ में आया? जिसके नाम से तू बात करता है, वे भगवान ऐसा कहते हैं। हैं? परमेश्वर... परमेश्वर... परमेश्वर... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर का बिम्ब पूरा प्रगट हुआ, अन्दर पूर्ण मूर्ति प्रगट हुई, उन भगवान की वाणी में '**जिणवरु एम भणेइ**' ऐसा वे कहते हैं। गृहस्थाश्रम में आत्मा का ज्ञान, श्रद्धा और अनुभव हुआ, वह आत्मा में बसता है - ऐसा भगवान कहते हैं। दूसरे कहें, जरा भी नहीं बसता। अरे...! क्या किया तूने? आत्मा नहीं? राग में बसे, पुण्य-पाप में बसे और वह समकिती व श्रावक? समझ में आया? आहा...हा...! कहते हैं कि, भगवान जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहीं रस नहीं पड़ता - ऐसा धर्मी को लगता है। कहीं रस नहीं पड़ता। आत्मा के रस के समक्ष कहीं सूझ नहीं पड़ती। समझ में आया? संसार में भी जब कोई लत (व्यसन) चढे, तब उसे नहीं होता? जो लत चढे, उसमें दूसरी सूझ नहीं पड़ती। यह एक ही पूरे दिन धन्धा, धन्धा, धन्धा। ऐ...ई...! धन्धा, दूसरी सूझ नहीं पड़ती। मर जाएँगे तो इसमें मरेंगे, कहते हैं। हैं? आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में आत्मा है या नहीं? या राग ने सारा आत्मा ले लिया? विकार ने पूरा आत्मा ले लिया? लूट गया? आहा... हा...! परमात्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु की जहाँ अन्तर रुचि, दृष्टि और एकाग्रता हुई (तो) गृहस्थ हो.... कम-ज्यादा रमणता का प्रश्न नहीं.... आत्मा में ही बसता है - ऐसा यहाँ कहते हैं। भाई! देखो! भाषा ऐसी है यह। ना मत कर, ना मत कर। ना करने से आत्मा नहीं रहता। समझ में आया?

भगवान सत्चिदानन्द प्रभु - जिसे अन्तर में, रुचि में जमा, परिणमन हुआ कहते हैं कि वह तो आत्मा में बसा है - ऐसा जिनवर कहते हैं। तू कौन कहनेवाला? कि गृहस्थाश्रम में आत्मा का ज्ञान और आत्मा में बसना नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? यह जिनवर के सामने बड़ा शत्रु जगा है, अर्थात् कि आत्मा का शत्रु है कि आत्मा नहीं हो। सम्यग्दृष्टि आत्मा में नहीं होवे (तो) वह कहाँ होगा? विकार में होगा? विकार में तो अनादि का था, तब बदला क्या? समझ में आया? शुभ और अशुभराग में तो अनादि का था, वह तो बहिर्बुद्धि थी। अब, अन्तर्बुद्धि हुई तो हुआ क्या? कुछ हुआ या फेरफार हुआ या नहीं? बहिरात्मा में पुण्य-पाप

के भाव मेरे और उनमें पड़ा हुआ यह मैं; आत्मा और वे मुझे लाभदायक - यह बहिर्बुद्धि तो अनादि की थी। अब इसमें बसा है और अन्तरात्मा भी इसमें बसा है - तो अन्तरात्मा हुआ किस प्रकार? समझ में आया? कहो, रतिभाई! आहा...हा...!

कहते हैं कि '**सागारु वि अ णागारु कुविं**' समझे न? गृहस्थ हो या कोई भी मुनि हो, '**जो अपने आत्मा में बसता है...**' '**जो अप्पाणि वसेइ**' जो कोई आत्मा में बसता है, '**वह शीघ्र...**' '**लहु... लहु**' अल्प काल में केवलज्ञान लक्ष्मी को पानेवाला है, पानेवाला और पानेवाला (है) - जिनवर ऐसा कहते हैं, बापू! यह दूसरी बात (कहे कि) ऐसा पढा हुआ है और ऐसा उघाड़ है और ऐसे समझाना आता है, हमने बहुत शास्त्र वाँचे हैं और पढ़े हैं.... शून्य रख उसमें। यह एक पढा, वह आत्मा में बसा है, कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! और उसका बसना सादि-अनन्त सिद्धरूप हो जाएगा- ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं मूल तो। बात (ऐसी है कि) यहाँ जहाँ बसा है, वह बसा है, वहाँ स्थिर होकर वह सिद्धपद की पूर्णदशा में बस जाएगा। आहा...हा...! योगीन्द्रदेव! देखो! दिगम्बर सन्त तो देखो! मुनि, जंगल में रहनेवाले दहाड़ मारकर (कहते हैं) सिंह (की तरह) दहाड़ मारी है, कहते हैं। गृहस्थाश्रम में होवे तो क्या? अन्दर आत्मा है या नहीं? आत्मा है या नहीं? या अकेला विकार ही है? अकेला विकार है तो अनादि का है, नया क्या किया तूने? समझ में आया?

प्रश्न - मुनि, आत्मा में लीन है; सम्यक्चारित्र से लीन है।

उत्तर - आत्मा में ही है, चाहे तो विकल्प आदि हो तो भी दृष्टि आत्मा में है, इसलिए आत्मा में ही बसा हुआ है। उसमें (विकल्प में) बसा ही नहीं। आहा...हा...!

'**आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द को सिद्धि सुख अथवा सिद्धों का सुख कहते हैं। जैसा शुद्धात्मा का अनुभव सिद्ध भगवान को है, वैसा ही शुद्धात्मा का अनुभव जब होता है, तब जैसा सुख सिद्ध वेदते हैं, वैसा ही सुख शुद्धात्मा का वेदन करनेवालों को होता है।**' अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दृष्टि को अनुभव (होता है) और सिद्ध को अनुभव (होता है), उस आनन्द की जाति एक है। समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान नित्यानन्द का नाथ, उसकी विकल्पदशा में दु:ख, उसे तोड़कर जिसने अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का तल लिया है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेनेवाला, सिद्ध (का) अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद और यह स्वाद, स्वाद की जाति में अन्तर नहीं है।

'**आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जिस साधन से हो, वही मोक्ष का उपाय है।**' देखो, भाषा! आत्मा के आनन्द का स्वाद जिस साधन (से होता है), वह मोक्ष का उपाय और वह आनन्द, सुख का साधन (है), वह आनन्द, सुख का साधन। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान आत्मा.... जो आत्मिक आनन्द का स्वाद जिस साधन से... साधन अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह स्वयं आनन्द है- ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वही मोक्ष का उपाय अथवा अनन्त सुख का साधन है। वही आनन्द के सुख का (साधन है), पूर्ण आनन्द के सुख का, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, पूर्ण आनन्द के सुख का साधन (है)। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन (होता है) वह अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्णानन्द का साधक है। राग-बाग, व्यवहार-फ्यवहार, निमित्त-फिमित्त, साधक-फादक है नहीं। कहो, इसमें समझ में आया? आहा...हा...!

'**क्योंकि स्वानुभव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और**

चारित्र - ये तीनों गर्भित हैं। स्वानुभव ही निश्चय रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग है।' आहा...हा...! ठीक लिखा है। स्वानुभव ही निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। राग के क्रियाकाण्ड में स्वानुभव है? वह निश्चयरत्नत्रय है-स्व-अनुभव। भगवान आत्मा स्वयं को अनुसरकर आनन्द से वेदन में आया, उसमें तीनों समाहित हो जाते हैं, कहते हैं। निश्चय-सत्य सम्यग्दर्शन, सत्य सम्यग्ज्ञान और सत्यचारित्र तीनों इसे आ गये। वह पढा-गुना कम, उसे केवलज्ञान का मूल (हाथ में) आ गया। समझ में आया? स्वानुभव ही निश्चय मोक्षमार्ग है।

'**यही एक सीधी सड़क मोक्षमहल की तरफ गयी है।**' यह सड़क कहाँ जाएगी? चक्रवर्ती के महल में। यह सड़क कहाँ जाएगी? चक्रवर्ती के महल में। वैसे (ही) आनन्द के अनुभव की सड़क कहाँ जाएगी? सिद्धि के पूर्ण आनन्द में। आहा...हा...! यही एक सीधी सड़क मोक्षमहल की तरफ गयी है। आ...हा...! विकल्प-फिकल्प, व्यवहार-फ्यवहार का तो यहाँ भुक्का उड़ाया है। '**अप्पाणि वसेइ**' है न? जो आत्मा में बसा है, वही पूर्ण आत्मा में बसने का महल-सिद्ध, उसके सन्मुख यह सड़क गयी है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, दरबार! मुम्बई में तुमने ऐसा सुना नहीं होगा। पैसा... पैसा... पैसा... पूरे दिन, धूल... धूल... और धूल। यह तो कहते हैं, आनन्द... आनन्द... और आनन्द... आहा...हा...! '**इसके अतिरिक्त कोई दूसरी सड़क नहीं है।**' दूसरी सड़क ही नहीं है।

मुमुक्षु - दो रास्ते हैं न?

उत्तर - दो रास्ते ही नहीं, एक ही रास्ता है। आत्मा का - आनन्दस्वरूप प्रभु का अतीन्द्रिय आनन्द(रूप होना, यह) एक ही (सड़क) अतीन्द्रिय पूर्णानन्द (की तरफ जाती है)। इस सड़क से जाकर पूर्णानन्द को पायेगा, दूसरी कोई सड़क-फड़क है नहीं; दूसरा कोई मार्ग-फार्ग व्यवहार बीच में आवे, वह मार्ग ही नहीं। बीच में आता अवश्य है - दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत के विकल्प (आते अवश्य हैं) परन्तु वह मार्ग नहीं है, वह मोक्षमहल में जाने की सड़क नहीं है; वह तो बन्ध में जाने की सड़क है। आहा...हा...! समझ में आया? फिर इन्होंने ग्यारह प्रतिमाओं के नाम लिये हैं। ठीक है, ग्यारह प्रतिमायें होती हैं। फिर अन्त में पुरुषार्थसिद्ध्युपाय का थोड़ा लिया है।

'**सर्व पापबन्ध के कारणरूप मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का त्याग करना, वह व्यवहारचारित्र है। सर्व कषाय की कालिमारहित, निर्मल, उदासीन, आत्मानुभवरूप निश्चयचारित्र है।**' आत्मारूप है न इसमें? यह है न? विशद्मुदासीन-मात्मरूपं है न? यह, क्या कहते हैं? पाप का त्याग करके शुभ में वर्तना, वह तो व्यवहारचारित्र है परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प छोड़कर, कषायरहित होकर आत्मा के अन्तर में अनुभवरूप चारित्र, आत्मा के आनन्द का अनुभव करना चारित्र, वह निश्चयचारित्र है। समझ में आया?

'**हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह-इन पाँच पापों से पूर्ण विरक्त होना, वह साधु का व्यवहारचारित्र है और उपर्युक्त पाँच पापों से एकदेश विरक्त होना, वह श्रावक का व्यवहारचारित्र है।**' व्यवहारचारित्र है, इतना स्पष्टीकरण यह भी करते हैं, उनको नहीं जमता।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके ९६९ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.३-७-१९८५, प्रवचन क्रमांक-५७८ (विषय : भेदज्ञान)

यदि तिर्यंच को भी सात तत्त्वों का भान न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता; क्योंकि यदि वह जीव की जाति ही न जाने तो स्व-पर को न पहचान पाए व फलस्वरूप पर में रागादिरूप कार्य किए बिना न रहे। लेकिन पशु को भी जीव-अजीवादि का श्रद्धान हो जाया करता है जिससे वह पर में रागादि के कार्य नहीं करता। कोई-कोई मेढ़क, चिडिया भी आत्मज्ञान पा लेते हैं—इन्हें जीवतत्त्व का यथार्थ भान होता है। मेरा तो चैतन्यस्वभाव है; वैसा पर में नहीं है अतः पर सो मैं नहीं और पर मुझ में नहीं है—ऐसे पर से भिन्न 'निज स्वरूप को' (सम्यग्दृष्टि) पशु पूर्णतः जानता है, और उसे पर में एकत्वबुद्धि होकर रागादि नहीं होते। ९६९.

पृष्ठ-१९४, ९६९. तत्त्वार्थ श्रद्धान का प्रकरण चल रहा है। मोक्षमार्ग प्रकाशक, नौंवे अधिकार में तत्त्वार्थ श्रद्धान यथार्थरूप से कैसा होता है, मनुष्य को भी और तिर्यंच को भी। तिर्यंच को उघाड़ कम होने पर भी प्रयोजनभूत ऐसा स्व-पर तत्त्वों का अथवा हेय-उपादेय तत्त्व का भावभासन तो यथार्थ ही होता है। यह विषय है।

'**यदि तिर्यंच को भी सात-तत्त्वों का भान न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।**' क्या कहना है? तिर्यंच को सम्यग्दर्शन नहीं होता। पंचम गुणस्थान में जो स्वरूप स्थिरता प्रगट होती है ऐसी स्वरूप स्थिरता की आराधना भी तिर्यंच की दशा में होती है। उतना पुरुषार्थ वह जीव अपने पुरुषार्थ को अन्य विषय में लगाये बिना बराबर कर सकता है, आत्मा में लगाकर। तिर्यंच को सात तत्त्वों का भान है ऐसा कहते हैं। वहाँ तो कोई सात तत्त्व शास्त्र का निरूपण है ऐसा कुछ नहीं है और उसको सात तत्त्व का भान होता है? हाँ, उसे सातों तत्त्वों का भान है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। एक तो सम्यग्दर्शन होता है उसको सातों तत्त्वों का यथार्थ भान होता है। सातों तत्त्वों का यथार्थ भान होता है, उसको ही सम्यग्दर्शन होता है। यह तो नियम है। इसलिये तिर्यंच को भी सात तत्त्वों का भान है। यदि सात तत्त्वों का भान न हो तो उसको भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अब वह कैसे है, उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

मुमुक्षु :— तिर्यंच को पंचम गुणस्थान?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, पंचम गुणस्थान। हाँ, हाँ बराबर होता है। अभी है, वर्तमान में भी तिर्यंच हैं। बड़े द्वीप, समुद्र हैं उसमें तिर्यंच हैं। देवदर्शन नहीं है, गुरु नहीं है, शास्त्र नहीं है, उपदेश देनेवाला नहीं है, फिर भी आत्मा है। वह सब निमित्त नहीं हैं, परन्तु उसका उपादान नहीं है, ऐसा थोड़ा ही

है, उसका उपादान है। पूर्व में देशनालब्धि प्राप्त की है। पूर्व के संस्कार भी उसको है। उतना कार्य उसने पूर्वपर्याय में भी उपादान से किया है। देशनालब्धि हुई वह भी उपादान का कार्य है, संस्कार ग्रहण किये वह भी उपादान का कार्य है। वहाँ का अधूरा कार्य यहाँ आगे बढ़ाता है, अपने पुरुषार्थ से। अनुकूल सहकारी निमित्त नहीं है, फिर भी अपने स्वतंत्र पुरुषार्थ से बराबर कार्य आगे बढ़ता है, चलता है। और अनुकूल निमित्त हो तब भी अपने स्वतंत्र पुरुषार्थ से ही कार्य होता है, निमित्त से कदापि कार्य नहीं होता।

मुमुक्षु :— ऊच्च संस्कार लेकर जाता है और फिर जन्मता है तिर्यंच में?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, अनेक प्रकार के पाप के परिणाम भी किये होते हैं, मायाचार के परिणाम किये होते हैं। सम्यग्दर्शन नहीं हुआ हो। सादि मिथ्यादृष्टि होता है, वहाँ प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करता है और पहली बार पंचम गुणस्थान प्रगट करता है।

मुमुक्षु :— यहाँ से तो संस्कार लेकर जाता है इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। यहाँ से संस्कार लेकर गया और फिर तिर्यंच में?

पूज्य भाईश्री :— संस्कार ग्रहण किये वह तो थोड़ा ऐसा काल बीता। पूरे जीवन में तो अनेक प्रकार के शुभाशुभ प रिणाम किये होते हैं जीवने।

श्रोता :— संस्कार...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, संस्कार तो अल्प काल में ही ग्रहण हो जाते हैं। संस्कार के लिये ऐसा नहीं है कि अनेक वर्ष पर्यंत शास्त्र स्वाध्याय करे उसको संस्कार ग्रहण होते हैं, कम समय के लिये करे उसको ग्रहण नहीं होते ऐसा नहीं है। वह तो जिस क्षण उसे उस प्रकार की पात्रता आत्मभाव रुचने की, आत्मभाव कि जिज्ञासा, ऐसी पात्रता जिस क्षण वर्तती हो उस क्षण में ऐसा कार्य हो जाता है। आगे-पीछे का जीवन परिणमन उसका अनेक प्रकार के शुभाशुभ परिणाम से व्यतीत होता है तो तिर्यंच होता है।

मुमुक्षु :—

पूज्य भाईश्री :— हाँ, वह सब तो सादि मिथ्यादृष्टि है। ऐसे सादि मिथ्यादृष्टि निगोद में अभी भी अनन्त हैं। कितने हैं? उसका अर्थ यह होता है, ऐसी सब चित्रविचित्र परिस्थिति का अर्थ यह होता है कि परिणाम एक ऐसा क्षणिक भावरूप तत्त्व है कि जिसका विश्वास करनेयोग्य नहीं है। परिणाम का विश्वास मत करना। ध्रुव का विश्वास करना, परिणाम का विश्वास मत करना ऐसा कहना है। अभी अच्छा भाव आया, इस प्रकार उसके विश्वास में मत रहना। ध्रुव के आश्रय में जायेगा, ध्रुव के विश्वास में चड़ेगा तो तेरा परिणमन सलामत है। और नहीं तो क्षणिक भाव अच्छा हुआ उसमें राचेगा, तो फिर परिणाम का ठिकाना नहीं रहेगा। शुभभाव हो मंद कषाय के। आज बहुत अच्छा भाव आया, आज बहुत भाव आये ऐसा करके संतोष मानने जैसा नहीं है। अथवा मैं प्रतिदिन स्वाध्याय के परिणाम करता हूँ, मैं प्रतिदिन स्वरूप चिंतवन के परिणाम करता हूँ, मैं प्रतिदिन ध्यान करने के परिणाम करता हूँ, इतने घण्टे तो प्रतिदिन मुझे ऐसा तो करना ही है, यह मेरा हमेशा का है। इसलिये मेरे परिणाम तो ठीक रहते हैं। मेरे परिणाम ठीक रहते हैं, इस प्रकार परिणाम के विश्वास में मत रहना, ऐसा कहते हैं। पलटने में देर नहीं लगेगी। एक क्षण में परिणाम ऊड़कर कहाँ जायेगा, ध्रुव के आश्रित नहीं बँधा हुआ परिणाम निरर्गल परिणमन है। अरगल रहित? अरगल समझे? कंट्रोल। आलड्राफ लगाते हैं न? उसे अरगल कहते हैं। आलड्राफ बिना दरवाजा बंद हुआ हो तो हवा के झोंके से खुल जाता है। ऐसे ध्रुव के आश्रय रहित परिणमन है वह निरर्गल परिणमन है। कभी ठीक लगे परन्तु उसके भरोसे नहीं रहा जाता, ऐसा कहना है।

बहुत चित्र-विचित्र स्थिति है परिणाम की। नीचे

जघन्य मोक्षमार्गी के परिणाम की विचित्रता नहीं आती है पुराणों में? कि एक श्रीरामचंद्र है, पुरुषोत्तम पुरुष हैं, पुरुषोत्तम पुरुष अर्थात् अत्यंत विचक्षण पुरुष हैं। फिर भी परिणमन में कैसा उतार-चढाव आता है। समझ सकते हैं कि नहीं? जब सीता का हरण होता है तो रुदन करते हैं। जब लक्ष्मणजी का देहांत होता है तब मुर्दे को कंधे पर लेकर घुमते हैं। वह तो श्रीकृष्ण का मृतक क्लेवर लेकर बलदेव घुमते हैं। छः माह जंगल में फिरते हैं। तीव्र राग है चारित्रमोह का, हां! उतना परस्पर राग है। दोनों भाईओं के बीच इतना आपस में तीव्र राग होता है।

श्रोता :— छः महिने से अधिक नहीं रहता।

पूज्य भाईश्री :— उतना ही। यह तो सम्यग्दृष्टि है, चारित्रमोह के परिणाम इतने उछलते हैं, राग। यह राग कैसे-कैसे उछलता है यह सावधान होने जैसा विषय हो जाता है। फिर भी वहाँ उसको अल्प बंधन है, तीव्र बंधन नहीं है। बाहर में तो लोगों को भूल हो जाये ऐसा है। ज्ञानी ऐसे होते हैं? इसको आप ज्ञानी कहते हो? इस पागल को आप ज्ञानी कहते हो? ऐसा बोल दे।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। चरम शरीर है। मुनिदीक्षा अंगीकार करेंगे। स्वरूप के ध्यान में लीन होकर और उसी भव में मोक्ष जायेंगे। उनकी नीचे ऐसी दशा है। छ-छ महिने तक मुर्दे को छोड़ते नहीं है। पत्नी का वियोग होता है पागल की भाँति रुदन करते हैं। फूट-फूटकर जंगल में रुदन करते हैं। पशु को पूछे, पक्षी को पूछे, उसको छोड़कर पेड़-पौधों को पूछे।

रावण तो आकाशगामी विद्याधर था न। इसलिये वे अपने जो आभूषण थे वह फेंकते थे। जो आभूषण पहने थे वह फेंकते जाते थे। इसलिलेय मालूम पड़े कि इस रास्ते मुझे ले गये हैं। पीछे से खोजेंगे तो सही, यह ख्याल आ गया। दोनों भाई पीछे खोज करने वाले हैं। आकाश-पाताल एक करेंगे। अतः इस रास्ते पर इस दिशा में जाना हुआ है ऐसा उनके आभूषण पर से देखते हैं, फिर ख्याल आता है। जटायु है न? जटायु मरते-मरते कहता है, उनको लंका में ले गया है। रावण को बीच में रोकता है। थोड़ी मारामारी होती है उसमें वह घायल हो जाता है। फिर मर जाता है, परन्तु उसके पहले रामचंद्रजी उसे जंगल में मिल जाते हैं।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— नहीं, वह विद्याधर ही है। वह भी विद्याधर है। आमने-सामने विद्या जानते हैं इसलिये आकाश में लड़ाई होती है। इन लोगों में विद्याधर का विषय नहीं है इसलिये उसको फिर पक्षी ठहराया है। हनुमानजी को बंधर ठहराया है, अच्छी छलांग मार सके इसलिये। वह सब विद्याधर है, विद्याधर है।

मुमुक्षु :— हनुमानजी विद्याधर है?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, विद्याधर है। हनुमानजी, फिर उनके सब साथीदार सुग्रीव, वाली सब विद्याधर का सैन्य है। विद्याधर सब मनुष्य होते हैं। रावण भी मनुष्य ही है न, परन्तु वह विद्याधर है। इसलिये तो उसे ऐसा था कि मैं तो आकाशगामिनी विद्या, अनेक शस्त्र-अस्त्रकी विद्या जानता हूँ। राम तो भूमिगोचरी है। वह कहाँ आकाश में ऊड़ सकता है? मैं तो ऊपर से आकर मार दूँ। उसका कहाँ दम है? इतना तो उसको विद्या का अभिमान था। फिर भी लक्ष्मण के हाथ उसकी मृत्यु होती है।

मुमुक्षु :— नारायण और प्रतिनारायण। लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण।

पूज्य भाईश्री :— आमने-सामने है। ये तो परिणाम कैसे उछलते हैं। उसके भरोसे नहीं रह सकते। परिणाम के भरोसे पर रहे उसके परिणाम नीचे गये बिना नहीं रहते।

मुमुक्षु :— परिणाम के सामने देखता है...

पूज्य भाईश्री :— ऐसा ही है। परिणाम के सामने देखे या परिणाम के भरोसे रहे, एक ही बात है।

आधार वह है, उसका वह आधार जूठा है।

मुमुक्षु :— विश्वास को कल ज्ञान में लिया।

पूज्य भाईश्री :— हाँ, विश्वास से जानता है कि नहीं? जो जाने उसका विश्वास करे और न करे, ऐसे दो प्रकार बनते हैं कि नहीं? जानने पर शंका करे। छीप में चांदी होगी या नहीं? चांदी जैसा चमकता है तो चांदी होगी या नहीं होगी? शंका होती है या नहीं?

ऐसे आत्मा में अनंत शक्ति कही, अनंत सुख भरा है ऐसा कहा तो अनंत सुख कहीं दिखता नहीं है। जाना कि आत्मा में सुख है। अब अनुभव तो है नहीं। तकलीफ क्या है? कि अज्ञानी जीव ऐसी दलील करता है कि आत्मा ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है आप कहते हो, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख है, परन्तु यहाँ कुछ दिखता नहीं है, हमे ख्याल में नहीं आता है। जिसने अनुभव किया हो, जाना हो वह भले ही ऐसा कहे, ऐसा भले ही उसको अनुभव (होता हो), परन्तु हमें क्या? हमें क्या करना? हमें तो पेट में दर्द होते ही आकुलता होती है, सर दर्द होते ही आकुलता होती है। शाता-अशाता में तो दूसरा कुछ सूझता ही नहीं। शरीर में एकाकार हो जाते हैं।

कहते हैं, तुझे ऐसा जानने मिला के तेरे आत्मा में अनंत ज्ञान है, तेरे आत्मा में अनंत सुख है। वह जानने के साथ तुझे कुछ आता है कि अविश्वास होता है? यह सवाल है। विचारज्ञान में जीव विवेक करता है कि ऐसा कहने वाला कौन है? जिसने आत्मा में अनंत सामर्थ्य बताया ऐसा कहने वाले कौन है? ऐसा कहने वाले की प्रमाणिकता कैसे नक्की करनी? उसकी सदोषता से या निर्दोषता से? यह सब विचार विवेक हो सकता है। संज्ञी जीव बराबर विचार कर सकता है कि भले मुझे विषय का ज्ञान नहीं है परन्तु कहने वाला यदि प्रमाणिक है, कहने वाले का आशय भी प्रमाणिक है और उसमें दूसरा कोई दुराशय नहीं दिखता है। तो यह बात ज्ञात होने पर उसका विश्वास और प्रतीति करनेयोग्य है। और वह विश्वार एवं प्रतीति करे तो उस दिशा में गहराई में ऊतरने का विशेष प्रयत्न करे।

आत्मा में अनंत ज्ञान और अनंत सुख है उसकी अंतर खोज कब करेगा? कि जानने के काल में उसने प्रतीति की होगी तो। जानने के समय प्रतीति नहीं की होगी, विश्वास नहीं किया होगा उस बात का तो उस विषय में जीव गरहाई में नहीं ऊतरेगा, सुन लेगा। कदाचित् उसे कर्णेन्द्रिय का विषय बनायेगा कि यह सुनना मुझे ठीक लगा इसलिये मैंने सुना। अभी तो सुनने में ठीक लगा, कल दूसरा कुछ सुनने में ठीक लगेगा तो वह सुनेगा। कर्णेन्द्रिय का विषय हो गया।

ये प्रवचन करते हैं उसमें आता है न? धार्मिक प्रवचनों में भी मनोरंजन हो ऐसा विषय परोंसते है कि नहीं वक्ता, प्रवक्ता? उसकी कर्णेन्द्रिय को ठीक लगे तो कहेगा, बहुत अच्छा भाई, बहुत सरस है, सुनने में मजा आता है हम को तो इसलिये हम सुनते हैं। रस आता है सुनने का इसलिये हम सुनते हैं, सुनने को जाते हैं। किसका रस आता है उसका विवेक करना चाहिये।

मुमुक्षु :— गुरुदेव कहते थे, मनोरंजन करता है।

पूज्य भाईश्री :— उसका मतलब क्या है कि वह विवेक नहीं कर पाता है। आत्मा का हित हो ऐसे लक्ष्य से मुजे आगे बढ़ना है इस दिशा में और इसके अतिरिक्त अन्य कोई बात में मुझे आगे नहीं बढ़ना है। आत्मा के हित का लक्ष्य है। वह लक्ष्य है वह बड़ा काम है। इस बात का उसे अन्दर में ऐसा निर्णय करना चाहिये कि उस निर्णय में कोई फ़र्क़ न पड़े। फिर दिक्कत नहीं है। भूला नहीं पड़ेगा, अन्यथा भटकने में देर नहीं लगती। क्षण भर में भटक जाता है।

मुमुक्षु :— संस्कार अर्थात् योग्यता?

पूज्य भाईश्री :— संस्कार अर्थात् संस्कार। यह एक ऐसी गर्भित योग्यता है, योग्यता है सही परन्तु गर्भित योग्यता है। प्रगट योग्यता नहीं है। प्रगट में तो तिर्यंच हो, प्रगट में तो अनेक प्रकार के आरंभ-समारंभ में व्यस्त जीव दिखाई दे। तो ऐसा हो कि इसमें क्या है? यह तो मात्र संसार में रचापचा और डूबा हुआ जीव है ऐसा लगे। संस्कार ग्रहण हो गये हो, संस्कार ग्रहण कर लिये हो, वह जीव कभी फिर से जागृत हो जाता है और हित कर लेता है। वह गर्भित योग्यता है। संस्कार है वह प्रगट योग्यता नहीं है परन्तु गर्भित योग्यता है। अथवा वर्तमान योग्यता नहीं है परन्तु कोई भावि में उसे योग्यता उत्पन्न हो ऐसी कोई गर्भित स्थिति उत्पन्न हो गयी है ऐसा कहना है। इसीलिये तो द्रव्य को मानना पड़ता है। अकेली पर्याय को माने तो नहीं चलता। वह बात द्रव्य में गयी। वह पर्यायरूप नहीं है।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— कर्म का सवाल नहीं है। आत्मा के संस्कार अलग है और इसलिये उसमें कर्म का विषय नहीं है। कर्म के निमित्त का सवाल नहीं है। क्या कहते हैं?

'**यदि तिर्यंच को भी सात तत्त्वों का भान न हो तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता; क्योंकि यदि वह जीव की जाति ही न जाने तो स्व-पर को न पहचान पाए व फलस्वरूप पर में रागादिरूप कार्य किये बिना न रहे।**' स्व-पर की भिन्न-भिन्न जाति को वह पहचानता है इसलिये वह पर में रागादि नहीं करते हैं। पर है ऐसा ज्ञात होने पर पर की उपेक्षा ही होती है। जो पर को पर के रूप में जाने, पर को परस्वरूप जो जाने उसमें पर की उपेक्षा हुए बिना नहीं रहती। क्योंकि अपना सम्बन्ध नहीं है। पर है। जैसे पर में होना हो वैसा हो। उससे मुझे क्या? मुझे लाभ भी नहीं है और नुकसान भी नहीं है। ऐसी उपेक्षाबुद्धि होती है। तिर्यंच इतना कर सकता है। मनुष्य को तो ज्यादा अवकाश है। ऐसा है। परन्तु अपनी शक्ति का दुर्व्यय करता है, अपनी शक्ति को योग्य स्थान में लगानी चाहिये (वहाँ नहीं लगाता)।

उपयोग को योग्य स्थानरूप करना। अनुभव प्रकाश में वचन आ गया। उपयोग को योग्य स्थानरूप करना। अर्थात् जो उपयोगधारी है उसमें उपयोग की रमणता करनी, इसके बजाय उपयोग को अनेकविध परपदार्थों में लाभ नुकसान मानकर, स्वीकार के जो उपयोग को घुमाता रहता है तो उसकी शक्ति एवं पुरुषार्थ सब वहाँ चला जाता है। अवकाश होने पर भी वह अवकाश उसे काम में नहीं आता।

हित करने के लिये जो मनुष्यभव और जो मनुष्यगति एकदम असाधारण मौका है, अवसर है उस मौके को जीव अन्य कार्यों में खो देता है। फिर ख्याल भी है कि मैं जो दौड़ दौड़ता हूँ वह दौड़ अनेक दौड़े हैं और यहाँ सब कुछ छोड़कर चले गये। और जो उसने खुब सँभालने में सावधानी एवुं पुरुषार्थ व आत्मा को पूरा का पूरा वहाँ डूबो दिया, उसी संपत्ति का पीछे से दुर्व्यय होता है। उसके जो कोई कुटुम्ब परिवार वारिस हो तो ठीक और वारिस न हो तो किसीको तो लेता ही है। रास्ते पर तो किसीका कुछ रहता नहीं। तो उसका कोई भी उपयोग होता है। अब वह कहाँ सावधानी रखने आयेगा? उसकी संयोग की स्थिति मर्यादित है और वह संयोग की स्थिति मर्यादित होने से वह कुछ काम आने वाला नहीं है। काम में तो जितना स्वकार्य स्वयं साधेगा उतना ही काम आने वाला है। ऐसे जो जीव अपने हित को समझ ले वह विचक्षण है।

एक बार गुरुदेव भावनगर पधारे थे। तीन-चार दिन का यहाँ गुरुदेव का मुकाम था। वजाभाई के बंगले में ठहरे थे। भगवान छगन, वजाभाई सुतरिया। .... टंकी के पास। वहाँ ठहरे थे।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— वहाँ ठहरे थे। शाम का समय था, वहाँ ठहरे थे। एक बार वहाँ ठहरे थे। वजाभाई के वहाँ ठहरे थे। वजाभाई नये-नये परिचय में आये, आना शुरु हुआ था, और फिर कोई विनंती की होगी कुछ भी हो, भावनगर में उनके यहाँ ठहरे थे। शाम का समय था। चर्चा के लिये भाईओं जाते थे। उन दिनों में अपने मण्डल की संख्या इतनी नहीं थी, मण्डल अपना छोटा था। इसलिये वहाँ रात्रि-चर्चा में पाँच-पंद्रह भाईओं की संख्या होती थी, १५-२० भाईओं की। उतना करीब मण्डल था। बहुत बड़ा नहीं था। मैं चर्चा के समय से पहले दस-पंद्रह मिनिट जल्दी पहुँचा था। गुरुदेव जिस कमरे में चर्चा के लिये बैठने वाले थे वहाँ बैठे थे और नीचे पाट जैसा था। नीचे वजाभाई बगल में बैठे थे। देखिये! वजाभाई! मैंने ऐसा सुना है, व्यक्तिगत बात तो क्वचित् ही गुरुदेव करते थे, फिर भी कोई जीव पर विशेष करुणा का भाव हो तो कहते थे। मैंने सुना है कि आप बहुत हुशियार गिने जाते हो। संसार में विचक्षण मनुष्य की गिनती में आते हो। करोड़ों का संचालन उनके हाथ में था। उस जमाने के करोड़पति थे। संचालन सब उनके हाथ में था। चार-पाँच ... होगी। संचालन वे करते थे। सयाने मनुष्य हो, पाँच लोग पूछने आये ऐसे में आप की गिनती होती है, कोई सलाह ले, परन्तु एक बात कहता हूँ। आत्मा का हित कर ले वह विचक्षण, बाकी संसार के कार्यों की विचक्षणता में डूबा रहे और उसमें ही उसका जीवन व्यतीत हो जाय तो उसे विचक्षण नहीं कहते। अपने हित का लक्ष्य कर ले, वह साईड सँभाले नहीं, दूसरी साईड़ सँभालता रहे और इसकी सँभाल न ले तो वह सयाना नहीं है, वह विचक्षण नहीं है। विचक्षण और सयाना यह है। ऐसी बात करते थे। समझने जैसा विषय है। जो बुद्धिमान मनुष्य हैं, विचारवान मनुष्य हैं, जिनका उपयोग अनेक विषयों में काम करे ऐसा होता है, ऐसी शक्ति होती है, उसे शक्ति का उपयोग कहाँ करना? आयुष्य का क्या भरोसा? किसी भी क्षण पूरा हो जाय। तंदुरुस्ती में भी पूरा हो जाता है। ऐसा नहीं है कि बिमार होगा और उसके पहले नोटिस आने वाली है कि अब समझ जा। ऐसा कुछ नहीं है। किसी भी क्षण पूरा होता है।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— होगा, उसकी वह जाने। अपने को अपना विषय सँभालना है। अपने को उसमें से क्या बोध लेना, उतनी बात है। उस जीव को संस्कार पड़े हो तो हमें कुछ मालूम पड़ता है? कोई जीव को संस्कार ग्रहण हो गये हो वह मालूम पड़ता है? उस जीव को स्वयं को मालूम नहीं पड़ता तो आप को और मुझे कैसे मालूम पड़ेगा?

ज्ञानी का आत्मा का निरूपण और स्वरूप का उपदेश चलता हो, कौन-सा जीव क्या काम करता है, वह कैसे मालूम पड़े? इसलिये उसमें तो मध्यस्थ रहना। जब कोई महापुरुष को ऐसी व्यक्तिगत करुणा आये तब कोई गर्भित योग्यता हो भी सकती है ऐसे जीव की। वर्तमान हम को ऐसा लगे कि उसका अभी कोई ठिकाना नहीं है। परन्तु उसका क्या ठिकाना हुआ वह कहीं छद्मस्थ का विषय नहीं है और वास्तव में तो इस जीव को किसी की चिंता करने जैसी नहीं है। काम तो अपना करना है। दुनिया में तो अनेक प्रकार के परिणाम की योग्यता वाले जीव होते हैं और परिणमते हैं। हो, उससे क्या? उससे स्वयं को कोई लाभ-नुकसान नहीं है।

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंक में...)

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

४०

कलकत्ता
४-७-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी.....शुद्धात्म सत्कार।

आपके पत्र दहेगाँव व देहली दोनों स्थानों से मिले। मैं क़रीब एक माह से बाहर था। पन्द्रह दिन क़रीब बंबई भी रहना हुआ। पुण्ययोग के अभाव से, महाराज साहब का सोनगढ़ लौटने का प्रोग्राम लंबाने से, सोनगढ़ जानेका सोचा हुआ मेरा प्रोग्राम रुक गया। आप हर पत्र के साथ पतेका खाली लिफाफा भिजवाते हो, अब ऐसे नहीं भेजें, पता मैंने नोट कर लिया है। लिखने का विकल्प ओछा होनेसे जवाब में देर होती है। परंतु लिखना, विकल्प होना क्रियायें तो मुमुक्षुओं को हेय बुद्धि से सदैव सहज गौण ही रहती हैं। यह क्रियायें तो आचार्यों ने उन्मत्तों की कही हैं। पत्र बहुत ही विनयभरे आते हैं। विनयभावों का एकांत वेदन नहीं होना चाहिये। सहज सामर्थ्य में पसरने से, स्वरूप के बल से, सहज ही परिणामों में नहीं घसीटीजेंगे; वह परिणामों का वेदन, ज्ञायकभाव की मुख्यता में हेय बद्धिए गौण (क्षणे-क्षणे) होता जायेगा। पराश्रित विनयभाव दुःखभाव है, उपादेय कैसे होवे?

द्वादशांग का सार तो श्री गुरुदेव ने फरमाया है कि : ''वर्तमान में ही मूल, कायमी, त्रिकाली, ध्रुव स्वभाव, परिणामों का विश्रामधाम 'मैं' हूँ। इस स्थान में दृष्टि पसारकर, स्वयं व्यापक होकर, परिणामों की पकड़ छोड़ दो, इन्हें सहज ही परिणमने दो, इनमें अटको नहीं। परिणमन स्वभाव के समय ही अपरिणामी स्वभाव भी साथ ही साथ है। इस अपरिणामी स्वभाव को नित्य पकड़े रहो, यहाँ जमे रहो; इसके बिना निस्तार नहीं है। पत्रादिक का आधार, शास्त्राधार, अरे! प्रत्यक्ष तीर्थंकर की आधारबुद्धि भी स्वयं वर्तमान सामर्थ्य का अनादर करनेवाली है।'' ऐसा कह कर ही परम कृपालु गुरुदेव ने वर्तमान से ही उनपर से दृष्टि हटाकर, अघट-बढ़ त्रिकाली सदृश्य सामान्यस्वरूप में अपना अड्डा जमाकर निश्चल बिराजने को कहा है। उनके ऐसे सिंहनादरूप उपदेश को पाकर भी फिर दीनता क्यों? वर्तमान में ही अपने सिंह स्वभाव को - अनंत शक्तियों के धाम को संभालो! दीन विकल्प निराश्रय होकर टूटते जावेंगे, जड़ कर्म बिखरते जायेंगे, सुख-शांति का प्रत्यक्ष वेदन क्षणे-क्षणे बढ़ता जायेगा।

बंबई में नागरभाई आदि मुमुक्षुओं से भी मिलना हुआ था। आपका ज़िक्र भी आया था।

निरंतर अविच्छिन्न धाराएँ स्वरूपसुख में मग्न रहो। इससे च्युति करानेवाले विकल्प, विशेष विशेष मग्नता होते-होते, ढ़ीले पड़ते-पड़ते क्षय हो जायेंगे। ऐसा ही श्री गुरुदेव का अलौकिक उपदेश जयवंत वर्तो!

धर्मस्नेही
निहालचंद्र सोगानी

४१

कलकत्ता, १४-७-६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... शुद्धात्म सत्कार।

गत माह आपका पत्र आया था, तब मुझे बम्बईमें यहाँसे Re direct हो कर मिला था। इसके पहले क़रीब जनवरीमें पत्र आया था।

तत्त्वदृष्टिए, स्वभावबलमें जमते ही आना-जाना व न आना-जाना, जुदे ज्ञानमें सहज ही मोहभाव प्रतिभासित होते हैं; यह मोहभाव त्रिकालमें पौद्गलिक ही है, तो इनकी पकड़ क्यों? यह हमारे हैं ही नहीं - ऐसा इनसे भिन्न अनुभव, मात्र हमारा लक्ष्य हो जाना चाहिए।

भेदज्ञानसे भ्रम गयो, नहीं रही कुछ आश,
धर्मदास क्षुल्लक लिखे, अब तोड़ मोहकी पाश।

पूज्य श्री गुरुदेवके उपदेशका सार, द्वादशांगका सार तो केवल एक ही है कि 'अपने त्रिकाली स्वभावमें जैसे-तैसे भी होवे दृष्टि पसारकर विराजमान हो जावो'! क्षणे-क्षणे पदे-पदे वीतरागी ज्ञायकरसमें ऐसी मग्नता बढ़ती जायेगी जिसका विच्छेद एक क्षण भी नहीं गमेगा।

योग नहीं होनेसे, महाराज सा०का सोनगढ़ लौटनेका प्रोग्राम लम्बा जानेसे, बम्बईसे सोनगढ़ आनेका मेरा प्रोग्राम बदला गया। पुण्ययोग होनेपर, दशहरेके आसपास आनेका विकल्प है। आप सदैवानुसार पूज्य गुरुदेवश्रीकी अमृतवाणीका लाभ लेते होंगे। जिसका तात्पर्य उनकी ओरसे दृष्टि उठवाकर, पलटवाकर, निज अमर्यादित अमृत-खानमें व्याप्त कराना है।

शेष मिलने पर।

सर्व संगसे असंग होनेका इच्छुक
निहालचंद्र

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जून-२०१९) का शुल्क डॉक्टर महेशभाई महेता, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.२ B

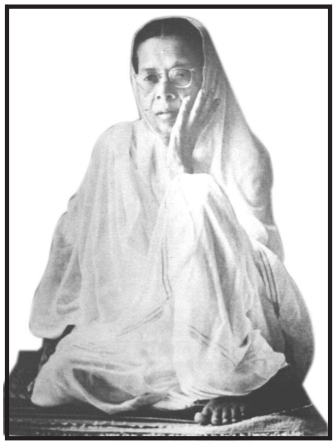

प्रश्न :- ..आप समजायेंगे? अथवा सर्वथा पर को नहीं जानता ऐसा कहें तो बराबर है कि नहीं?

समाधान :- छठवी गाथा में कहाँ ऐसा आता है?

प्रश्न :- गुरुदेव के प्रवचन में आता है, पर को जानता नहीं।

समाधान :- और दूसरी गाथा में? प्रवचन में आता है?

प्रश्न :- गुरुदेव की कैसेट है उसमें एक वाक्य आता है कि पर को जानता नहीं। और दूसरी गाथा में अमृतचंद्राचार्य की टीका है उसमें लिखा है कि पर को जानता नहीं ऐसा यदि मानेगा तो तुझे मिथ्यात्व है।

समाधान :- सब अपेक्षा हैं। पर को जानता नहीं यानी पर में एकत्व नहीं होता। पर को जानता नहीं यानी कि स्वयं का जो ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है। पर में एकत्व होता नहीं यानी कि वह पर को जानता नहीं, लेकिन अपना ज्ञान परिणमित होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। और पर को नहीं जानता (ऐसा मानेगा तो) मिथ्यात्व है। ज्ञान स्वभाव खुद का ही है तो ज्ञान सर्व को जानता है। ज्ञान ऐसा नहीं है कि पर को नहीं जाने। ज्ञान तो लोकालोक को जानता है। इसलिये ज्ञान जानता नहीं ऐसा माने कि.... छह द्रव्य जगत में है, द्रव्य-गुण-पर्याय, दूसरे अनंत द्रव्य हैं सर्व को ज्ञान जानता तो है। इसलिये नहीं जानता है ऐसा सर्वथा माने तो-तो मिथ्यात्व है। ज्ञान का स्वभाव है जानना।

नहीं जानता है अर्थात् पर में एकत्व होता नहीं। स्वयं ज्ञानरूप ही रहता है। ज्ञान, ज्ञान का स्वभाव है जानना। इसलिये सहज जानता है। ज्ञान स्वयं सहज स्वभावरूप परिणमता है, ज्ञानरूप। वह ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा वहाँ कहना है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय को जानता नहीं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये।

प्रश्न :- छठवीं गाथा में किस अपेक्षासे वहाँ कहना चाहते हैं? पर को जानता नहीं है तो वहाँ कौनसी अपेक्षा है?

समाधान :- अपेक्षा यह है कि ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान ज्ञान को जानता है, परज्ञेय उसमें आता नहीं। ज्ञान उसमें एकत्वबुद्धि होकर उसमें घूसकर, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में घूसकर ज्ञान नहीं जानता। ज्ञान भिन्न रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञान में रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। ऐसे। दूसरे ज्ञेय में एकत्व होकर, उसमें घूसकर नहीं जानता। ज्ञान का स्वयं का स्वभाव ही है कि स्वयं स्वयं को और अन्य को जाने। अर्थात् ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा उसका अर्थ है। सर्वथा ज्ञेय को जानता ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। सर्वथा नहीं जानता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

प्रश्न :- राग जीव की पर्याय में होता है और समयसार में राग को पुद्गल कहते हैं। जीव में चेतनगुण है और अचेतन गुण नहीं है तो अजीव किस हिसाबसे राग को कहते हैं?

समाधान :- राग है वह अपना स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव तो वीतराग है। राग उसका स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उस राग को अजीव कहा। लेकिन खुद की पर्याय में होता है इसलिये उसे चेतन कहा। चैतन्य की पर्याय में होता है। अपने पुरुषार्थ की मंदतासे होता है। इसलिये वह जीव की विभाविक पर्याय है। लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उसे अजीव कहा। उसकी दोनों अपेक्षा समझनी चाहिये। अजीव यानी अजीव ही नहीं है, तो राग कहाँ होता है? राग अजीव थोड़े ही करता है। राग अपनी पर्याय में होता है। लेकिन अपनी

पर्याय में होता है परंतु वह विभाव है, स्वयं का स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है इसलिये उसे अजीव कहा। तू तेरे द्रव्य स्वभाव को देख तो उसमें कोई राग नहीं है। तो यह राग कहाँसे आया? कि कर्म के निमित्तसे हुआ है इसलिये राग कर्म की ओर का है। इसलिये उस अपेक्षासे वह अजीव है ऐसा कहा। राग कुछ जानता नहीं, जाननेवाला तो आत्मा है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये वह अजीव है। इसप्रकार अपेक्षासे अजीव कहा है।

उसमें भी अपेक्षासे पर को नहीं जानता ऐसा कहा है। एकत्वबुद्धि करके नहीं जानता। उसमें राग और एकत्वबुद्धि करता है इसलिये वह ज्ञेय में जाता नहीं, भिन्न रहकर जानता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। सर्वथा नहीं समझ लेना। किस अपेक्षासे कहा है (उसे समझना)। राग को सर्वथा अजीव कहो तो करना क्या रहा? कुछ रहा नहीं। मोक्षमार्ग, पुरुषार्थ करना, मोक्षमार्ग प्रगट करना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय प्रगट करना, राग छोड़कर वीतराग स्वभाव प्रगट करना (यह नहीं रहता)। राग अजीव होता तो करना क्या रहा? तो-तो स्वयं को वीतरागता का वेदन होना चाहिये। वीतरागता का वेदन तो होता नहीं। वीतराग तो हो नहीं गया। उसका वेदन कहाँ होता है? राग अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न होओ। तेरा स्वभाव ज्ञायक है, ऐसा कहना है।

तू तेरे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर। आत्मा का स्वभाव भिन्न है। तू ज्ञायक है और यह राग तेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार भिन्न होओ। यदि राग की पर्याय ही नहीं हो ऐसा तो है नहीं, तो-तो वीतरागदशा का वेदन होना चाहिये। सर्वथा अजीव और जड़ हो तो।

सर्वथा पर को जानता नहीं हो, ज्ञान जाने ही नहीं तो लोकालोक का ज्ञान नहीं होगा। सर्वज्ञ स्वभाव केवलज्ञान जो लोकालोक को जानता है वह जानेगा ही नहीं। जाने ही नहीं, स्वयं को ही जाने तो ये सब जो भगवान की वाणी में आता है कि जगत में छह द्रव्य हैं, नौ तत्त्व हैं, ऐसी बात आती है। अनन्त द्रव्य हैं, जीव अननन्त, पुद्गल अनन्तान्त, स्वर्ग, नर्क इत्यादि अनेक प्रकार की बात आती है, वह सब भगवान की वाणी में आता है। वह सब ज्ञान ही नहीं हो। पर को जानता नहीं हो तो केवलज्ञान ही नहीं रहे, सर्वज्ञता ही नहीं रहे, कुछ रहता नहीं। सर्वथा नहीं जानता हो तो।

(तत्त्व चर्चा का शेष पृष्ठ-१९ पर...)

प्रकाशन कार्य गतिविधि

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा 'स्वानुभूतिदर्शन' ग्रंथ पर हुए प्रवचनों को कम्प्युटर में फिड़ करने का कार्य चल रहा है। पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंति प्रसंग पर आत्मावलोकन ग्रंथ पर हुए प्रवचनों के दो भाग (गुजराती में), एवं चिद्विलास ग्रंथ पर हुए प्रवचनों का एक भाग प्रकाशित करने की भावना है। तत्श्चात् राज हृदय भाग-३ और ४ (हिन्दी में), पूज्य भाईश्री की जन्म जयंति पर प्रकाशित करने की भावना है। संभवतः परमागमसार पर के प्रवचनों के दो भाग भी प्रकाशित होने की संभावना है।

नवीन प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए श्रीमद् राजचंद्र ग्रन्थ पर के धारावाही प्रवचनों के दो भाग--राज हृदय भाग-१ और भाग-२ हिन्दी की अर्पण विधि पूज्य सोगानीजी की जन्मजयंति प्रसंग पर सोनगढ़ में की गई। पूज्य भाईश्री द्वारा लिखित चिंतन कणिकाओंका पुस्तक 'अनुभव संजीवनी' गुजराती तथा 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' (गुजराती तथा हिन्दी) पुनः प्रकाशन हुआ है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनों को पुस्तक मंगवानी हो वे निम्न मोबाईल पर संपर्क करें। अतीन जैन-९३६८६८३९९१

(श्रीमद् राजचंद्र पत्र...)

१९८ बंबई, माध सुदी ११, गुरु, १९४७

सतको अभेद भावसे नमोनम:

पत्र आज मिला। यहाँ आनन्द है (वृत्तिरुप)। आजकाल किस प्रकारसे कालक्षेप होता है सो लिखियेगा।

दुसरी सभी प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा जीवको योग्यता प्राप्त हो एसा विचार करना योग्य है; और उसका मुखय साधन सर्व प्रकारके कामभोगसे वैराग्यसहित सत्संग है।

सत्संग (समवयस्क पुरुषोंका, समगुणी पुरुषोंका योग)में, जिसे सत्का साक्षात्कार है ऐसे पुरुषके वचनोंका परिशीलन करना कि जिससे कालक्रमसे सत्की प्राप्ति होती है।

जीव अपनी कल्पनासे किसी भी प्रकारसे सत्को प्राप्त नहीं कर सकता। सजीवनमूर्तिके प्राप्त होनेपर ही सत् प्राप्त होता है, सत् समझमें आता है, सत्का मार्ग मिलता है और सत्पर ध्यान आता है। सजीवनमूर्तिके लक्षके बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह सब जीवके लिये बन्धन है। यह मेरा हार्दिक अभिमत है।

यह काल सुलभबोधिता प्राप्त होनेमें विध्नभूत है। फिर भी अभी उसकी विषमता कुछ (दुसरे कालकी अपेक्षा बहुत) कम है; ऐसे समयमें जिससे वक्रता व जड़ता प्राप्त होती है ऐसे मायिक व्यवहारमें उदासीन होना श्रेयस्कर है...सत्का मार्ग कहीं भी नहीं दिखायी नहीं देता।

आप सबको आजकल जो कुछ जैनकी पुस्तकें पढ़नेका परिचय रहता हो, उसमेंसे जिस भागमें जगतका विशेष वर्णन किया हो उस भागको पढ़नेका ध्यान कम रखें; और जीवने क्या नहीं किया? और अब क्या करना? इस भागको पढ़ने और विचारनेका विशेष ध्यान रखें।

कोई भी दूसरे धर्मक्रियाके नामसे जो आपके सहवासी (श्रावक आदि) क्रिया करते हों, उसका निषेध न करें। अभी जिसने उपाधिरुप इच्छा अंगीकार की है, उस पुरुषको किसी भी प्रकारसे प्रगट न करें। मात्र कोई दृढ़ जिज्ञासु हो उसका ध्यान मार्गकी ओर जाये ऐसी थोड़े शब्दोमें धर्मकथा करें (और वह भी यदि वह इच्छा रखता हो तो), बाकी अभी तो आप सब अपनी-अपनी सफलताके लिये मिथ्या धर्मवासनाओंका, विषयादिककी प्रियताका, और प्रतिबंधका त्याग करना सीखें। जो कुछ प्रिय करने योग्य है, उसे जीवने जाना नहीं है; और बाकीका कुछ प्रिय करने योग्य नही है, यह हमारा निश्चय है।

आप जो यह बात पढ़े उसे सुज्ञ मगनलाल और छोटेलालको किसी भी प्रकारसे सुना दीजिये, पढ़वा दीजिये।

योग्यताके लिये बह्मचर्य एक बडा साधन है। असत्संग एक बडा विध्न है।

(पूज्य बहिनश्री की तत्त्व चर्चा...)

केवलज्ञान नहीं रहता। स्वयं स्वयं को ही जाने, दूसरे द्रव्य को कोई जाने ही नहीं। जगत में सूक्ष्म परमाणु है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय की सूक्ष्मता भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं। भूतकाल की बात, वर्तमान की, भविष्य की बात वह सब कोई जाने ही नहीं। यदि ज्ञेय को जानता नहीं हो तो। कोई पूर्व की बात जाने नहीं, स्वयं कुछ जाने ही नहीं। यदि सर्वथा नहीं जानता हो तो।

(तत्त्व चर्चा का शेष अंश अगले अंक में...)